आँसू की उस छाया

झारखंड के चितरपुर बुनियादी विद्यालय की पाँचवीं क्लास में मेरे नामांकन केबाद पिता के चेहरे पर मेरे भविष्य को लेकर निश्चिंत होने का भाव उभर आया था। वे जानते थे कि उस विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री कपिलदेव शर्मा न सिर्फ ग्रेजुएट हैं बल्कि कवि भी हैं। उनके मन में ग्रेजुएटों के लिए विशेष सम्मान था। वे खुद भी ग्रेजुएट होने की दिशा में प्रयासरत थे। उनके पाठ्यक्रम में होने के कारण प्रेमचंद की पुस्तक *`रामचर्चा'*और मैथिलीशरण गुप्त की *`पंचवटी'*को चोरी-छिपे पढ़ने का मौका मुझे मिल गया था। उस चोरी-छिपे पढ़ने में मुझे क्या मिला इसकी व्याख्या करना मेरे लिए आज संभव नहीं है। व्याख्या का प्रयास करना उचित भी नहीं प्रतीत होता है। जीवन में कुछ चीजें अव्याख्येय बने रहकर ही हमारे मन को तर किये रहती हैं। उस प्रभाव की स्मृति मेरे मन के अंदर कहीं अमृतकोष की तरह सुरक्षित है उसे कुरेदना ठीक नहीं है।

शर्मा जी की कविताओं की एक किताब `आँसू *की छाया'*नाम से छप चुकी थी। इस किताब की एक प्रति उन्होंने मेरे पिता को दी थी। इस घटना पर मेरे पिता बहुत ही पुलकित थे। यह किताब बहुत दिन तक हमारे घर में थी। पिता की वह पुलक मुझे आज भी याद है। उस विद्यालय में आठवीं तक की मेरी पढ़ाई पूरी होने के पहले ही पिता जी का वहाँ से कथारा कोलियरी स्थानांतरण हो गया। कोलियरी का वातावरण किसी को भी बिगड़ जाने का पूरा *अवसर*देता है। इस *अवसर*के लाभ का पूरा असर मुझ पर भी पड़ा। पढ़ाई लिखाई से मेरा रिश्ता टूटता ही चला गया। इस बीच कभी शर्मा जी की याद नहीं आई। जिंदगी अपनी रफ्तार से जारी रही। इस बीच साहित्य की ओर मेरा रुझान बढ़ने लगा था। मैथिली में एक-दो कविताएँ भी छप गई थीं और मैं विज्ञान की पढ़ाई को इंटर में ही नमस्कार कर आगे की पढ़ाई के लिए हिंदी साहित्य का समर्पित विद्यार्थी बन गया था। ऐसे में ही एक दिन बिसराई हुई *`आँसू की छाया'*की जीर्ण-शीर्ण प्रति मिली। उस प्रति को देखकर पिता एक बार फिर पुलकित तो हुए लेकिन इस बार उनकी पुलक बहुत ही क्षणजीवी निकली। `आँसू *की छाया'*के बचे हुए अंश को मैं पढ़ गया और पाया कि उसमें छायावादी प्रभाव कुछ अधिक ही

था। कुछ ऐसी भाव-भंगिमा उन काव्यांशों में अंतर्संगुंफित थी कि कभी तो उसमें से निरा छायावादी प्रभाव झाँकता दीख जाता था तो कभी नितांत निजी दुख की सामान्य अभिव्यक्ति।

एक दिन अपने अंकपत्रों की प्रतिलिपि को अभिप्रमाणित करवाने के लिए पास के बोकारो थर्मल बुनियादी विद्यालय पहुँचा तो मैं यह देखकर चकित रह गया कि प्रधानाचार्य की कुर्सी पर कपिलदेव शर्मा बैठे हैं। मैंने तुरंत उनके चरण छुए। पिता का नाम बताने पर वे मुझे पहचान गये। हाल-चाल की प्रारंभिक औपचारिकता पूरी होने के बाद जब उन्होंने मेरे आने का उद्देश्य पूछा तो मैंने अपने अंकपत्रों की प्रतिलिपियाँ उनके सामने रख दी। मैं साहित्य का विद्यार्थी हूँ, यह जानकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मैंने उनकी काव्यपुस्तक और उनके रचना कर्म के बारे में उत्सुकता व्यक्त की। इस चर्चा से वे एक बारगी खिलकर फिर जैसे बुझ-से गये। उन्होंने बहुत धीमे स्वर में कहा, 'आँसू *की उस छाया से मैं आजीवन मुक्त नहीं हो पाया। जीवन भर उन्हीं आँसुओं के गीत गाता रहा।'* वे आँसू क्या थे, मुझे खेद है कि न तो ठीक-ठीक मैं यह समझ सका और न उन से यह पूछने का साहस ही कर सका।

नौकरी के सिलसिले में जब कोलकाता आया तो बहुत सारे ऐसे लोगों के साहित्य कर्म और साहित्य संघर्ष को पास से देखने का मौका मिला। कई तो अब धीरे-धीरे अपनी उम्र के अंतिम पड़ाव पर पहुँच गये हैं। थके-थके से दीखनेवाले इन लोगों के पास निश्चित ही एक और मन है जो अब भी नहीं थका है। गोपाल प्रसाद, केदार सारथी, निर्भय मलिक और भी बहुत सारे लोग हैं जो साहित्य के कुरुक्षेत्र में डटे हैं। ऐसे ही एक युवा साथी हैं कमलापति पांडेय। अपने नाम के साथ `निडर' उपनाम भी जोड़ते हैं। *निडर* जी जूटमिल में अस्थाई मजदूर हैं। छटपटाहट को छंद में गाँथकर अपने दुख को सहनीय बना लेते हैं। साहित्य के कमलवन में छिड़े गजग्राह युद्ध से बहुत दूर ऐसे संघर्षशील लोग कहीं भी मिल सकते हैं। गजग्राह युद्ध के बाहर यह पीपिलिका संघर्ष किसलिए जारी रहा करता है! क्या मिलता है? अभिव्यक्ति का सुख? जिसे सुनने के लिए आस-पास का कोई तैयार नहीं होता उसे कह देने का *भवभूतीय संतोष*? अज्ञात प्रिय को अपनी पीड़ा और प्रेरणा से परिचित करवाने की जिद पूरी करने का मोह? जिनके साथ जुड़ाव असाध्य हो गया हो उनके साथ जुड़ने का एक वैकल्पिक प्रयास? वह क्या है जो ऊपर-ऊपर से रचनाविरोधी दीखनेवाले माहौल में भी 'आँसू *की उस छाया'* में जीने-रचने के साहस का अक्षय स्रोत बना हुआ रहता है!